International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2016; Page No. 11-13

भारतीय कृषक जीवन के जीवन्त पात्र "होरी" और "बलचनमा"

डॉ0 दीपा त्यागी

हिन्दी विभागाध्यक्षाए, इस्माईल नेशनल महिला, महाविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश
प्रेमचन्द का होरी और नागार्जुन का बलचनमा उपन्यास में अवतरित होने वाले काल्पनिक पात्र नहीं है अपितु कृषक जीवन के जीवन्त पात्र हैं, जो लम्बे समय से चले आ रहे कृषकों के संघर्ष की कहानी कहते हैं। एक ऐसा भारतीय किसान जो ऋणग्रस्त हैं बिरादरी में बने रहने के लिए प्रत्येक प्रकार का दण्ड़ भोगने को उद्यत, खेतिहर से मजदूर बन घोर परिश्रम करता है, शोषकों के विरूद्ध आवाज बुलन्द करे या न करे पर उसका अंत दुःखद ही होता है। आज भी असंख्य होरी और बलचनमा विवशता भरा जीवन यापन करते हुए आत्महत्या कर रहे हैं। भारतीय किसानों का जीवन कल भी विडम्बनापूर्ण था और आज भी है। हमारी सरकार का कर्त्तव्य बनता है कि उनकी समस्याओं का शीघ्र समाधान करे और साथ ही हम सब को भी जागृत होना होगा जिससे कृषक जीवन के जीवन्त पात्र सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें।

मूलशब्दः कृषक जीवन, होरी, बलचनमा

प्रस्तावना
ठिठुरन भरी सर्द सुबह मीलों पैदल चलकर खेत तक आने जाने का अभ्यस्त, तपती धूप एवं लू के थपेड़ों में भी कार्य संलग्न, धारा प्रवाह वर्षा में सदैव तत्पर रहकर अपने लिए तथा अन्य जन जीवन के लिए अन्न उपजाता है तब जाकर उसे दो जून की रोटी प्राप्त होती है, ऐसा भारतीय किसान वर्षों से पीड़ा एवं संत्रास का जीवन व्यतीत करता आ रहा है उसका जीवन व्यथा की गाथा है और शायद रहेगा ? ऐसा नहीं था कि इस वर्ग ने अपनी आवाज न उठाई हो, समय समय पर विद्रोह की चिंगारी धधकती है पर कुछ समय बाद उसी तरह खाली हाथ खाली पेट। अंग्रेजी सरकार की शोषण नीति एवं महत्वाकांक्षाओं के तले दबे हुए किसान एक बार गांधी जी की अगुवाई में एकजुट होकर अंग्रेजों के विरूद्ध खड़े हुए थे। "वर्ष 1914 चंपारण के किसानों के लिए काफी अशुभ रहा । वजह यह थी कि औद्योगिक क्रांति के बाद नील की माँग बढ़ जाने के कारण ब्रिटिश सरकार ने भारतीय किसानों पर सिर्फ नील की खेती करने का दबाव डालना शुरू कर दिया। आंकड़ों की मानें तो साल 1916 में लगभग 21,900 एकड़ जमीन पर आसामीवार, जिरात और तीन कठिया प्रथा लागू थी। चंपारण के रैयतों से मड़वन, फगुआही, दशहरी, सिंगराहट, घोड़ावन, लटियावन, दस्तूरी समेत लगभग 46 प्रकार के 'कर' वसूले जाते थे और वह कर वसूली भी काफी बर्बर तरीके से की जाती थी।"[1]

सन् 1917 में खेतिहर राजकुमार शुक्ल की अगुवाई में चल रहे संघर्ष को गांधी जी ने व्यापक आंदोलन का रूप दिया, मार्च 1918 तक चंपारण एगरेरियन बिल' पर गवर्नर जनरल के हस्ताक्षर के साथ तीन कठिया समेत कृषि सम्बन्धी अन्य अवैध कानून भी समाप्त हो गए पर क्या यह धरती पुत्र की विडम्बनओं का अंत था ? क्या उसकी भाग्य लिपि में परिवर्तन का आरम्भ था ? कुछ ऐसे प्रश्न जिनका समाधान या कहें उत्तर आज तक भी अनुपलब्ध है। सन् 1918 में ही स्वदेश के प्रवेशांक में किसानों के हितों की हिमायत करते हुए प्रेमचंद ने लिखा था "हमारे कृषक अब भी नीच समझे जाते हैं उनसे अब भी बेगार ली जाती है। उन पर नाना प्रकार के अन्याय किए जाते हैं। स्वार्थान्ध जमींदार–गण उन्हें सताने और कुचलने में अब भी संकोच नहीं करते। हमारे ऊपर मूर्खता का वही पुराना साम्राज्य है। हमारी जनता (कृषक वर्ग) जो प्रधानतः देहातों में रहती है, उसे जगाना, उसे अपनाना, उसकी उपेक्षा न करके उसके प्रति प्रेम और संवेदना के भाव प्रकट करना प्रत्येक स्वेदशाभिमानी का प्रधान कर्त्तव्य है।"[2] प्रेमचंद एवं नागार्जुन दोनों ही जन साहित्यकार थे। जन–जन के दुःख दर्द उनके अपने थे। स्वयं भी उन्होंने विकट परिस्थितियों में जीवन यापन किया था। धरती पुत्र से तो उनका विशेष स्नेह रहा है तभी तो भारतीय किसान प्रेमचंद के 'गोदान' में 'होरी' तथा नागार्जुन के 'बलचनमा' में 'बलचनमा' के रूप में अवतरित हुआ है। प्रेमचंद ने एक अलख जगाई थी जमींदारी उन्मूलन आंदोलन के विरूद्ध आवाज उठाई तो नागार्जुन ने भी जमींदारों के अमानुषिक अत्याचारों का चित्रण करते हुए उस आंदोलन को तीव्रता प्रदान की "गोदान में प्रेमचंद किसानों की जिस प्रसुप्त अधिकार चेतना को जगाने के लिए प्रयत्नशील हैं, बलचनमा में आकर वह पूर्णतया जाग उठी है। 'बलचनमा' के रूप में होरी की तरह जीवन भर अनवरत संघर्ष करते, घुटते, छटपटाते और टूट जाने वाले किसान का नहीं एक जुझारू और संघर्षशील किसान का अवतरण होता है।"[3]

'होरी' और 'बलचनमा' जीवन्त पात्र
प्रेमचंद का 'होरी' और नागार्जुन का 'बलचनमा' उपन्यास में अवतरित होने वाले काल्पनिक पात्र मात्र नहीं हैं अपितु कृषक जीवन के जीवन्त पात्र हैं जो लम्बे समय से चले आ रहे कृषकों के संघर्ष की कहानी कहते हैं। यद्यपि विविध साहित्यकारों ने किसानों की व्यथा वर्णित की है, परन्तु होरी और बलचनमा के रूप में भारतीय किसान की कारूणिक गाथा जीवन्त हो उठी है। उस समय का किसान बहुत दरिद्र था उसकी दशा दिन–प्रतिदिन गिरती जा रही थी और इसका मुख्य कारण था–ऋणग्रस्त होना, अकाल पड़ना और पैदावार कम होना। उसकी दशा के मुख्य दोषी अंग्रेज थे, जिन्होंने महाजनी सभ्यता का जाल फैलाया था। इसी सभ्यता के चलते किसान जीवन मजदूर जीवन में परिवर्तित होता जा रहा था। जमींदारी प्रथा नामक रोग महामारी की तरह पैर पसार रही थी, जिसके परिणामस्वरूप किसानों की जमीन छिनी जा रही थी।कर्ज किसानों के लिए 'अतिथि कब जाओगे' के रूप में आता था अर्थात् जो जाने का नाम ही नहीं ले रहा था। "होरी" एक ऐसा ही किसान है जो ऋण की मार झेलते हुए मन मारकर जीवन यापन करता है। "वह जानता था, घर में रुपये नहीं हैं अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सका, बिसेसर साह का देना भी बाकी है, जिस पर आने रुपए का सूद चढ़ रहा है"[4] दिन–रात पसीना बहाकर खेतों में अन्न उत्पन्न किसान करे और हिस्सेदार बन बैठें जमींदार और महाजन।

होरी की भोला से वार्तालाप में यह दयनीय अवस्था उभरकर आती है – "जमींदार तो एक ही है मगर महाजन तीन–तीन हैं सहुआइन अलग और मँगरू अलग और दातादीन पण्डित अलग। किसी का ब्याज भी पूरा न चुका।"[5]

नागार्जुन का बलचनमा भी ऐसा ही किसान है जो कर्ज की मार से पीड़ित है उसकी व्यथा इन शब्दों में व्यक्त हुई है–'हमारे पास कुल सात कट्ठा जमीन थी मझले मालिक सौ कसाई के एक कसाई थे।बाबू के मरने पर बारह रुपये उन्होंने माँ को कर्ज दिये थे। बदले में सादे कागज पर अगूँठे का निशान ले लिया था। सूद देते–देते हम थक गये, मूर ज्यों–का–त्यों खड़ा था छोटी मलिकाइन दुअन्नी के हिसाब से साल भर कर दरमहा डेढ़ रुपैया देती थीं। उतने से क्या होता....।"[6] बलचनमा के शोषण का यह सफर पहले से ही चलते आ रहा था इसी शोषण के कारण वह पितृविहीन हुआ। उसकी यातना तत्कालीन किसान की यातना थी, जो नागार्जुन ने समीप से देखी थी कृषि ही कृषक के आर्थिक ढाँचे का आधार होती है और उस समय तो अधिकांश भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार कृषि ही थी। कृषि प्रधान देश में कृषक मजदूरी करने के लिए विवश थे। उस समय का यथार्थ चित्रण 'गोदान' के आधार पर बच्चन सिंह के शब्दो में–'किसान समाज महाजनों से घिरा है जमींदारों का शोषण उतना भयावह नहीं था जितना महाजनों का जहरीला शोषण। लाला परमेश्वरी और पुरोहित दातादीन के ऋण प्लेग के कीटाणु की तरह घातक थे। दुलारी आना रुपया ब्याज लेती थी। झिंगुरी सिंह एक साल का ब्याज पेशगी काटकर रुपया देते थे। महाजनों के शिकंजे में किसान वर्ग दिन प्रतिदिन कसता जा रहा था। बिरादरी की आचार संहिता अलग थी। उस संहिता का पालन न करने पर बिरादरी दंड की कठोर व्यवस्था करती थी।"[7] भारतीय कृषक परिवार बिरादरी के कठोर बधंनों से भी स्वयं को मुक्त करने में असमर्थ थे। बिरादरी से बाहर जाने का भय उसे पीड़ित करता रहता था क्योंकि अपनी विरादरी से बाहर के जीवन की वह कल्पना भी नहीं करता था। उसकी यह दुर्बलता भी शोषण का एक कारण रही है। 'होरी' के भीतर भी यह भय बना रहता है विशेषतः जब, जब उसका पुत्र गोबर झुनिया को लेकर आ जाता है तो उसका दुष्परिणाम होरी एवं धनिया को भोगना पड़ता है। होरी की सहृदयता संवेदनशीलता एक ओर झुनिया को आश्रय देती है तो दूसरी ओर उसे दण्डित किया जाता है होरी पर सौ रुपये नकद और तीस मन अनाज डाँड लगाया गया। धनिया द्वारा विरोध किये जाने पर होरी हाथ जोड़कर कहता है "हम सब बिरादरी के चाकर है, उसके बाहर नहीं जा सकते वह जो डाँड लगाती है, उसे सिर झुकाकर मंजूर कर । नक्कू बनकर जीने से तो गले में फाँसी लगा लेना अच्छा है। आज मर जायँ तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगाएगी? बिरादरी ही तारेगी तो तरेंगे ।"[8] 'बलचनमा' जातिगत, धर्मगत बंधनों के आगे कम ही झुकता है फिर भी कहीं न कहीं बिरादरी का भय उसके भीतर भी है, तभी तो वह कहता है "मुसलमानों का छुआ खाना खाने में परहेज–उरहेज नहीं था लेकिन इतना डर जरूर लग रहा था कि बिरादरी का कोई देख लेगा तो यह खबर गाँव–घर पहुँच जायेगी नाहक बखेड़ा खड़ा होगा।"[9] बलचनमा होरी की अपेक्षा जागरूक, विद्रोही एवं सजग है पर बिरादरी से बाहर की कल्पना नहीं करता।

कृषक समाज में प्राचीन परम्पराएँ, रीति–रिवाज जीवित थे जिसके कारण अन्तर्जातीय विवाह जैसे कार्यों में बाधाएँ थीं। वर्तमान समय पर दृष्टिपात करें तो आज भी कुछ विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं देता, आये दिन खाप पंचायतें अपने निर्णय देकर कानून को चुनौती देती हैं। अधिकांश गाँवों में उनकी व्यवस्था, उनके कायदे कानून चलते हैं चाहे वे दण्ड स्वरूप किसी का हुक्का पानी बंद कर दें या गाँव से निष्कासित कर दें अथवा अर्थ भार से जर्जरित कर दें। दोनों साहित्यकारों ने कृषक जीवन के सामाजिक पक्ष को नजदीक से देखा और उसे यथार्थ सूक्ष्म, सजीव एवं स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किया। "ग्राम्य जीवन में प्रवर्तमान जातिवाद के मूल में लोगों की अज्ञानता, अशिक्षा, उनका रूढिग्रस्त मानस, बिरादरी का भय निम्नजाति के लोगों की लघुता ग्रंथि तथा हमारी राजनीति है। शिक्षा शहरोन्मुखता, गांधीवाद के प्रभाव से इसमें परिवर्तन आया है फिर भी कृषक समाज की जातिवाद में आस्था बनी हुई है।"[10] वैसे भी एक किसान के लिए उसकी बिरादरी, गाँव एवं गाँव की प्रकृति खेत खलिहान निर्जीव एवं अचेतन नहीं है वह उसके जीवन का एक हिस्सा है सजीव, चेतन एवं सप्रमाण अंग। होरी तो वह भारतीय किसान है जो खेतिहर से मजदूर बना, घोर परिश्रम करता है, पसीना बहाता है, बिरादरी में बने रहने के लिए प्रत्येक प्रकार के दण्ड को स्वीकार कर लेता है पर महाजनों एवं जमींदारों के सामने लड़ाई नहीं ठानता उनका कभी सामना करने की हिम्मत नहीं जुटा पाता जबकि बलचनमा के भीतर परिवर्तन की बयार है उसके भीतर का किसान विद्रोह करता है स्वयं तो विद्रोही है ही अन्य किसानों को भी सचेत कर जमींदारों के विरूद्ध संघर्ष आरम्भ करता है। वह अवसरवादी नेता नहीं है अपितु एक पीड़ित शोषित कृषक वर्ग का ही एक अंग है। वेदनाओं और अत्याचारों ने ही उसे आंतरिक घाव देकर सक्रिय एवं सजग बनाया है तभी तो निडर होकर वह संघर्षशील बना। "बलचनमा उपन्यास में सबसे पहली बार नागार्जुन ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में बंधुआ मजदूर, खेतिहर और किसानों के तीखें संघर्ष को अभिव्यक्ति प्रदान की है जमींदारों द्वारा भूमिहीन किसानों से बेगार लेना काम न करने पर उनकी पिटाई करना, किसान–मजदूर की बहू बेटियों को बलात् भोगना आदि का चित्रण कर जमींदारों के दोहरे अत्याचारों की ओर संकेत किया है।" [11] बलचनमा अपनी बहिन का गौना अतिशीघ्र करना चाहता है और वह अपनी माँ की इच्छा के विरूद्ध यह निर्णय लेता है। माँ की इच्छा थी कि बेटी कुछ दिन और उसके पास रहे जबकि बलचनमा का डर दूसरा था वह किसी भी तरह इज्जत के साथ अपनी बहिन रेवनी को ससुराल भेजना चाहता है क्योंकि जमींदारों का गाँव है, उनके पास धन–दौलत है और साथ ही आराम की कमी भी नहीं है दूसरो की बहू बेटियों पर कुदृष्टि रखना उनका शौक है पंडित, पुरोहित, पुलिस सब उनकी जेब में हैं किसी का कोई भय नहीं। कृषक परिवार की व्यथा बलचनमा के इन शब्दों में व्यक्त हुई है "बड़े घरों के क्या जवान क्या बूढ़े, बहुतेरों की निगाह पाप में डूबी रहती थी। गौना होकर कोई नई–नबेली किसी के घर आती तो इन लुच्चों की आँख उसकी घूँघट के इर्द–गिर्द मँडराया करती.... कई बार ऐसा होता कि जिसे देखने को बाप बेताब हो उठता उसी पर बेटा भी फिदा! उन दिनों मालिक लोगों का ही राज था..... किसी की इज्जत आबरू को बेदाग रहने देना उन्हें बर्दाश्त नहीं था।"[12] शोषण की यह कहानी आये दिन खेतों खलिहानों में हो रहे बलात्कार के रूप में आज भी समाज को झकझोरती है और ग्रामीण युवती की बेबसी को उजागर करती है। प्रेमचन्द एवं नागार्जुन दोनों ही अपने समय से बहुत आगे थे। प्रेमचन्द का होरी पेशे से कृषक–मजदूर होने के साथ साथ आम भारतीय किसान है। सामान्य प्रजा या जनता के प्रतिनिधि कहे जाने वाले लोग पग–पग पर उसका शोषण करते हैं।होरी "मुख्यतः भारतीय किसान की समष्टि आत्मा का प्रतीक है"[13] लम्बे संघर्षों के पश्चात् जिसका दुखद अंत होता है शोषित होरी का पीछा मृत्यु उपरान्त भी नहीं छूटता उसको मुक्ति की प्राप्ति 'गोदान' करने से होगी ऐसे धार्मिक अंधविश्वास के कारण सुतली बेचकर प्राप्त हुए बीस आने भी पंडितों के द्वारा ले लिए जाते हैं।

किसानों का संघर्षमय जीवन

बलचनमा एक ऐसा किसान है, जो जमींदारों से संघर्ष करने के लिए सचेत हो जाता है, मौत को सामने देखकर यही सोचता है

"बेटी, औरत, माँ, गन्ने की खड़ी फसल, पलानी में सोये हुए भोलंटियर कि जिनके मुँहों में शायद कपड़े ठूँस दिये गये हैं और कमाने वाला खायेगा, इससे चलते जो कुछ हो.... धरती किसकी? जोते–बोये उसकी! किसान की आजादी आसमान से उतरकर नहीं आयेगी, वह परगट होगी नीचे–जुती धरती के भुरभुरे ढेलों को फोड़कर.....।"[14] आर्थिक विषमताएँ, सामाजिक कुरीतियाँ, जातिगत एवं धार्मिक तनाव, राजनैतिक अस्त व्यस्तता आदि सभी देश को कमजोर बना रहे हैं आज भी देश के कोने कोने में असंख्य 'होरी' और 'बलचनमा' हैं जो विवशता एवं संत्रास का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हिन्दुस्तान समाचार पत्र का यह समाचार दिल दहलाने वाला है कि "बर्बाद फसल देख 56 और किसानों की मौत" [15] आये दिन यह खबरे सुर्खियों में रहती हैं। 21 अप्रैल 2016 का यह समाचार "शहरों में मजदूरी करने को खेतिहर मजबूर" [16] भीतर तक द्रवित कर जाता है। ये समाचार तो उदाहरण मात्र हैं। 31 मार्च 2013 तक के आँकड़े बताते हैं कि 1995 से अब तक 2,96438 किसानों ने आत्महत्या की। पहले देश में किसानों की आत्महत्या की खबरें महाराष्ट्र के विदर्भ और आन्ध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र से आती थीं किन्तु अब इसमें बुंदेलखंड के पिछडे क्षेत्र ही नहीं अपितु हरित क्रान्ति की कामयाबी में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने वाले हरियाणा, पंजाब, पं0 उत्तर प्रदेश जैसे राज्य भी शामिल हैं। कुछ वर्ष पहले कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (सीएसीपी) ने पंजाब में अध्ययन के आधार पर किसान आत्महत्याओं के कारण जानने का प्रयास किया। इसमें सबसे बड़ा कारण किसानों पर बढ़ता कर्ज और छोटी होती जोत है। साथ ही मंडियों में बैठे हुए साहुकारों द्वारा लिये जाने वाले ब्याज की दरें भी ऊँची हैं। अगर केवल उत्तर प्रदेश को ही लें तो बरेली, बदायू, शाहजहाँपुर, लखीमपुर और पीलीभीत से खेतिहर मजदूर या छोटे किसान सूखे, खराब मौसम और खेती की बढ़ती लागत के कारण पलायन कर रहे हैं। शहरों और कस्बों में मजदूरी करने को विवश हैं। समाचार पत्रों से प्राप्त सूचनाएँ एवं आँकड़ें 'होरी' और 'बलचनमा' के जीवन्तता की कहानी कहते हैं। सौ से भी अधिक वर्षों से किसान दलितों, शोषितों का सा जीवन जी रहे हैं। 'गोदान' में होरी के चरित्र में करूण विवशता है पर बलचनमा उसकी अपेक्षा जागरूक है। "होरी समझौता करता है, झुकता है और अन्त में टूट जाता है परन्तु बलचनमा इसके विपरीत टूट तो जाता है मगर झुकता नहीं है। मरते मरते भी उसे अपने मूलभूत लक्ष्य का ध्यान रहता है, उसका संकल्प अडिग रहता है।"[17] आज का किसान 'होरी' की तरह घुट–घुटकर जीते हुए आत्महत्या की ओर बढ़ा है या रोगग्रस्त हुआ है तो दूसरी ओर उसने अपनी भूमि को बचाने के लिए 'बलचनमा' बनकर संघर्ष भी किया है बढ़ते औद्योगीकरण एवं शहरीकरण को अनेक बार चुनौती दी है पर विडम्बना यह है कि आत्महत्या, भूखमरी, खेतों, पर ही दिल का दौरा पड़ जाना आदि दुर्घटनाएँ श्रमशील वर्ग को क्यों झेलनी पडती है कर्ज की मार हो या धर्म का बहाना या फिर प्राकृतिक प्रकोप जो भी कारण हो सब ओर से परास्त कृषक जीवन ही होता है आखिर क्यों ? एक ओर जल के अभाव में खेत खलिहान सूखते हैं तो दूसरी ओर वाहन धोने, बंगलों के धोने, कुत्तों को नहलाने के लिए ढेरों पानी व्यर्थ किया जाता है। सरकार ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं करती कि फसलों को कम से कम नुकसान पहुँचे। पानी की समुचित व्यवस्था की जा सके। एक विडम्बना यह है कि जब कृषि उत्पाद बाजार में आता है तो उसके मूल्य में गिरावट आती है और मध्यस्थ सस्ती दरों पर उत्पादों को क्रय कर लेते हैं जिसके फलस्वरूप कृषक को घाटा होता है ये मध्यस्थ ही मोटा पैसा कमाते हैं क्योंकि इनके द्वारा माँग और पूर्ति को ध्यान में रखते हुए मूल्य निर्धारित किये जाते हैं जबकि किसान की जिंसों का मूल्य सरकार या क्रेता द्वारा निर्धारित किया जाता है। कई बार तो कुछ फसल शीघ्र खराब होने के डर से किसान अल्प मूल्य में ही निकाल देता है क्योंकि उसके पास संसाधनों का अभाव है ऐसी स्थिति में लागत भी निकलना कठिन हो जाता है तब किसान को सामाजिकता के निर्वाह हेतु या स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या होने पर कर्जदार होना ही पड़ता है।

निष्कर्ष

भारत कृषि प्रधान देश है पर आजादी के इतने वर्षों बाद भी कृषि के रखवाले, धरती पुत्र किसान का जीवन अभावों से युक्त है। आजादी से पूर्व अंग्रेजी शासन गुनहगार था पर आज कौन है? कहने को हमारी सरकार कृषकों की आत्महत्या सुनकर विचलित होती है, नई–नई घोषणाएँ करती है कर्ज माफ भी करती है, क्या कर्ज माफ करना समस्या का समाधान है.... शायद नहीं, सरकार को चाहिए आय बढ़ाने की ओर ध्यान दे, संसाधनों को उपलब्ध कराये। कृषि योग्य भूमि के अधिग्रहण को रोका जाये, ऐसी भूमि का अधिग्रहण हो जो ऊसर बंजर हो तथा जिसमें कम पैदावार होती हो। घोषणाएँ कागजी ना हो उन पर अतिशीघ्र अमल किया जाएँ क्योंकि जब तक उनका क्रियान्वन होता है तब तक घर उजड़ जाता है। "इससे बड़ी विडम्बना क्या होगी की पूरे देश का पेट भरने वाला किसान खुद भूख से मरता है, आत्महत्या करता है।उसके घर की छत टपकती है फिर भी वो बारिश का इंतजार करता है"।[18] 'होरी' और 'बलचनमा' की पीड़ा साहित्यकार की पीड़ा हो सकती है। वे उनकी वेदनाओं, उन पर हो रहे अत्याचारों का साक्षी बनकर समाज को सचेत कर सकते हैं पर हम कब जागृत होंगे, कब भारतीय कृषक जीवन के जीवन्त पात्रों को घुट–घुटकर मरते हुए नहीं बल्कि सुखमय जीवन व्यतीत करते हुए देखेंगे? सरकार के साथ–साथ खेत–खलिहानों को बचाना उनके रक्षकों को सुरक्षित करना हमारा भी कर्त्तव्य है।

संदर्भ

1. त्यागी के सी– लेख, हिन्दुस्तान समाचार पत्र मेरठ गुरूवार 21 अप्रैल 2016, पृ0 12।
2. पटेल नित्यानन्द– प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना, पृ0 73।
3. त्यागी सुरेशचन्द्र– संपादक, नागार्जुन, पृ0 210।
4. प्रेमचंद– गोदान, पृ0 9 सरस्वती प्रेस–दरियागंज नई दिल्ली।
5. प्रेमचंद– गोदान पृ0 21।
6. नागार्जुन– बलचनमा, पृ0 12–13 वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
7. सिंह बच्चन– आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन इलहाबाद, पृ0 201।
8. प्रेमचंद– गोदान, पृ0 108।
9. नागार्जुन– बलचनमा, पृ0 148।
10. डॉ0 पटेल उत्तम भाई, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में कृषक जीवन, पृ0 129।
11. त्यागी, सुरेश चन्द्र– संपादक, नागार्जुन, पृ0 217 आशिर प्रकाशन सहारनपुर।
12. नागार्जुन– बलचनमा, पृ0 59।
13. मिश्र रामकृष्ण– सौन्दर्य और समीक्षा, पृ0 113।
14. नागार्जुन– बलचनमा, पृ0 172।
15. हिन्दुस्तान समाचार पत्र मेरठ, 17 अप्रैल 2015, मुख पृष्ठ।
16. हिन्दुस्तान समाचार पत्र मेरठ, 21 अप्रैल 2016
17. त्यागी, सुरेशचन्द्र– संपादक नागार्जुन पृ0 212
18. त्यागी, नरेश कुमार– संपादक गुणवाणी हिन्दी मासिक पत्रिका मेरठ अप्रैल 2014 पृ0 25।
19. आंकडे- www.bbc.com/india/2015